सांस्कृतिक राष्ट्रवाद

संदर्भ : एकात्म मानवदर्शन

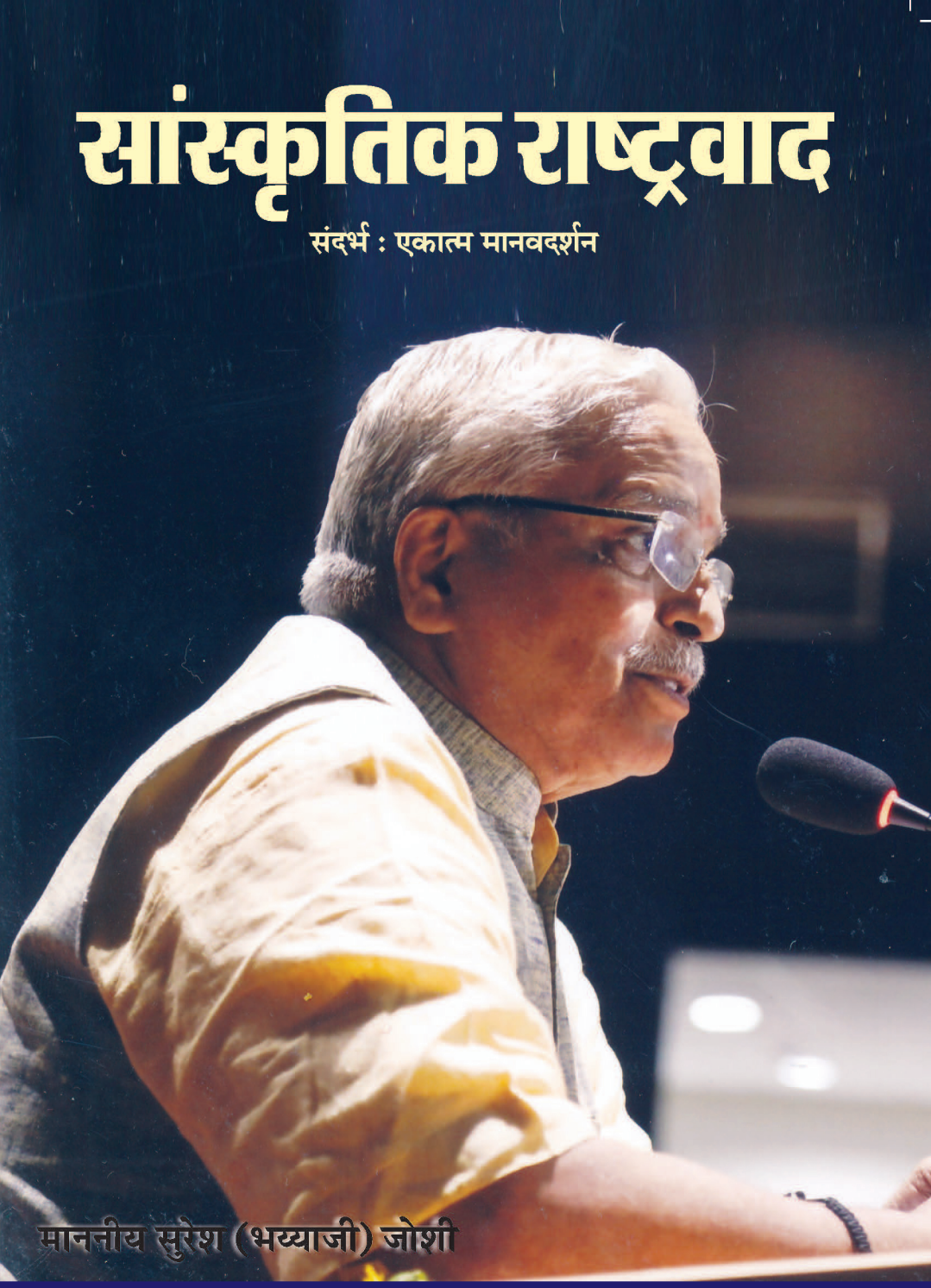

माननीय सुरेश (भय्याजी) जोशी

दीनदयाल शोध संस्थान

एकात्म मानवदर्शन के प्रणेता

पंडित दीनदयाल उपाध्याय

(25 सितंबर, 1916-11 फरवरी, 1968)

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद

सुरेश (भय्याजी) जोशी
सरकार्यवाह, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ

दीनदयाल शोध संस्थान

प्रस्तावना

दुनिया के अनेक देशों में राष्ट्रवाद को बहुत नकारात्मक रूप से लिया जाता है। जर्मनी व इटली में नाजिम, फासिज्म, के रूप में राष्ट्रवाद आया। वर्तमान संदर्भ में विश्व के समक्ष राष्ट्र की परिभाषा का संकट है। दुनिया में राष्ट्र की कोई परिभाषा नहीं है। संयुक्तराष्ट्र संघ को अधिकार है कि वह किसी भी श्रेष्ठ राज्य को संप्रभु राष्ट्र की मान्यता दे सकता है। इस मान्यता के कारण राष्ट्रों की संख्या बढ़ती-घटती रहती है। सोवियत संघ पहले एक राष्ट्र था, अब वह 14 राष्ट्र हो गए हैं। यूगोस्लाविया पहले एक राष्ट्र था, अब 6 राष्ट्र हो गए हैं। इंडोनेशिया भी पहले एक राष्ट्र था ईस्ट तैमूर अलग हो गया तो वह संख्या बढ़ गई है। संयुक्त राष्ट्र संघ चार्टर में राष्ट्र की कोई परिभाषा नहीं है। इसकी वजह है संयुक्त राष्ट्र संघ के पास कोई मानक नहीं होना जो राष्ट्र को परिभाषित कर सके। इसलिए राष्ट्र एक मजाक का विषय बन गया है। उदाहरण स्वरूप, एक व्यक्ति भारत में पैदा होता है तो उसकी राष्ट्रीयता भारतीय, फिर पाकिस्तान जाने पर वहां की और बांग्लादेश जाने पर वहां की हो जाती है। अर्थात, एक व्यक्ति जीवन में 3 तरह की राष्ट्रीयता हासिल कर लेता है। राष्ट्र की अवधारणा निर्मित इकाई के रूप में हो गई है। राष्ट्र को बनाने-बिगाड़ने की समझ के कारण अराजकता की स्थिति पैदा हो गई है। इस अराजकता को दूर करने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने सीधा हस्तक्षेप किया। परमपूज्य श्री गुरुजी और पंडित दीनदयाल उपाध्यायजी ने इस अराजक स्थिति को ठीक करने राष्ट्र को भू-सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का नाम दिया।

राजनीति शास्त्र में राष्ट्र का मतलब नेशन है। नेशन लैटिन से बना है। यह शब्द यूरोप में सामंती राज्य खत्म होने के बात औद्योगिक क्रांति के समय आया। भाषा विज्ञान में पता चला कि नेशन नया शब्द है, राष्ट्र बहुत प्राचीन शब्द है। ऋग्वेद में राष्ट्र शब्द का अनेक बार जिक्र है। भारतीय वाङ्मय में राष्ट्र शब्द पढ़ने के बाद यह सोचना पड़ता है कि राष्ट्र को नेशन शब्द देना क्या उचित है? वाङ्मय जिसको राष्ट्र कहता है उस तक यूरोप को पहुंचने में अभी बहुत समय लगेगा। भूमि के प्रति समाज के रिश्ते से ही राष्ट्रीयता परिभाषित होती है। भारतीय मनीषियों ने समाज को भूमिपुत्र कहा है। विष्णु पुराण में कहा गया है, **'उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रेश्चौव दक्षिणम्। वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः।।'** समुद्र के उत्तर में और हिमालय के दक्षिण की भूमि का नाम भारत है। वहां के लोग उसकी संतान हैं।

माता-पिता और संतान से भू-सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को समझना जरूरी है। इसके लिए एक वर्णन बताना चाहूंगा। द्वितीय महायुद्ध के बाद देश का बंटवारा हुआ। तब यह माना गया कि एशिया के लोग पिछड़े हैं। वह धर्म के नाम पर लड़ते हैं। जातियों में बंटे हुए हैं। उस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति को भारत ने भोगा। 1990 के बाद पूरा यूरोप परेशान है। 1947 में जिस द्विराष्ट्रवाद से भारत जूझा था, उसी द्विराष्ट्रवाद से यूरोप जूझ रहा है। वहां फ्रांस और फ्रेंच मुद्दा बन गया है। यूरोपीय देश जनसांख्यकीय परिवर्तन पर शोध कर रहे हैं। फ्रेंच, नॉर्वे, जर्मन के पास राष्ट्रीयता व्यक्त करने की शब्दावली नहीं है। विश्व प्रसिद्ध राजशास्त्री डॉ. इकबाल नारायण सोवियत संघ पर पीएचडी कर रहे थे। वह अचरज में थे कि विविधता के बाद भी भारत एक है, वहीं विविधता नहीं होने के बाद भी सोवियत संघ में एकात्मता नहीं है। संयोग था कि प्रोजेक्ट पूरा होने के पहले ही सोवियत संघ टूट गया।

राष्ट्र और राज्य की अवधारणा के कारण विश्व चुनौती से घिरा हुआ है। राष्ट्रीयता को भू-सांस्कृतिक रुप से व्यक्त करने पर चिति की पहचान होती है। तब हम विश्वयुद्ध की वजाय विश्व शांति तक पहुंचेंगे। राष्ट्र और राज्य की अवधारणा ने विश्व को साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद के साथ दो महायुद्ध दिए। जिसे आज वैश्विकरण कहा जाता है, इससे अनेक तरह की गला काट स्पर्धा पैदा हो गई है। मानवता के सुख के लिए भू-सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को आना चाहिए। उसके परिणाम से मानवता सुखी हो पाएगी। इसको लाने का दायित्व भारत निभा रहा है। पंडित दीनदयालजी के जन्म शताब्दी के अवसर पर हम संकल्प करें कि इस अवधारणा को हम मानवता के मस्तक का तिलक बनाएंगे।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जन्म शताब्दी वर्ष पर 14 अगस्त, 2017 को इंदौर और 18 नवम्बर, 2017 को अजमेर में दीनदयाल शोध संस्थान ने दो महत्वपूर्ण व्याख्यान आयोजत किए. इन दोनों में मुख्य वक्त थे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के माननीय सरकार्यवाह सुरेश जोशी (भय्याजी)। इसका संपादन दिल्ली विश्वविद्यालय के डिप्टी प्रॉक्टर डॉ. राजकुमार फुलवारिया एवं पत्रकार राकेश शुक्ला द्वारा किया गया है। संपादित रूप में ये व्याख्यान यहां प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

शीघ्र ही इनका अंग्रेजी रूपांतरण भी प्रकाशित किया जा रहा है।

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद

श्री सुरेश 'भय्या' जोशी

माननीय सरकार्यवाह, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ

इन्दौर, 14 अगस्त 2017

इन्दौर नगर के सज्जन वृंद, बहनों एवं भाईयों।
मैं आपके सामने कुछ विषय रखने के लिए खड़ा हूँ।

पं. दीनदयाल जी उपाध्याय और नानाजी देशमुख इन दोनों महापुरूषों का ये जन्म शताब्दी वर्ष है। संयोग है कि एक ही समय में इन दोनों महापुरूषों ने इस पुण्य भूमि पर जन्म लिया और इनके सानिध्य में हम सबको रहने का कुछ अवसर प्राप्त हुआ, यह अपना भाग्य है। एक महापुरूष के बारे में कहा जा सकता है कि उन्होंने गहराई से अध्ययन, चिन्तन किया और विश्व के सामने एकात्म मानवदर्शन के रूप में अपने भारत के चिन्तन की प्रस्तुति की और दूसरे महापुरूष ऐसे हैं कि जिन्होंने उस चिन्तन को समझकर, जमीन पर उतारने का प्रयास किया। इसलिए इन दोनों महापुरूषों के चरणों में विनम्रता से प्रणाम करते हुए उनको मैं मेरी सुमनांजलि प्रस्तुत करता हूँ।

आज हम 14 अगस्त स्वतंत्रता दिवस की पूर्व संध्या पर यहाँ पर एकत्रित हैं। 70 वर्ष पूरे हो हुए हैं। 71वां स्वतंत्रता दिवस कल हम मनायेंगे। और इसलिए स्वभाविक रूप से इस स्वतंत्र देश में हमको जीने के अवसर प्राप्त हैं। यह हम सबका भाग्य है, इसका हम सबको आनन्द है। और इसलिए इस पर्व पर आप सबको अभिनन्दन करते हुये, आप सबका अभिवादन करते हुए मैं कुछ बातें कहूंगा। 70 वर्ष पूर्व देश का अपना एक संविधान के आधार पर अपना राज्य शुरू हुआ। लेकिन बहुत कुछ सोचने के, चिन्तन के विषय हैं। मन में प्रश्न आता है कि 15 अगस्त 1947 को जो हुआ क्या वह ठीक हुआ? क्या हमारे पूर्वजों की आकांक्षाओं के अनुरूप हुआ? गुलामी से मुक्त हुआ भारत देखने का आनन्द तो है लेकिन एक वेदना भी हम सबके अन्त:करण में है। इसके साथ मजहब के आधार पर इस देश का दो टुकड़ों में बाँटा गया। तब प्रश्न आता है कि क्या हम वास्तविक रूप से स्वतंत्र हुए हैं? 14 अगस्त को जो अपने आपको भारत का

नागरिक मानते थे, वे 15 अगस्त को भारत के नागरिक नहीं रहे, करोड़ों की संख्या में नहीं रहे। एक दिन में नागरिकता, एक दिन में इस देश के साथ का रिश्ता टूट सकता है? क्या यह संभव है? मैं मानता हूं कि ये इतना आसान नहीं, इतना संभव भी नहीं। राजनैतिक दृष्टि से देश का विभाजन हुआ, परन्तु क्या उसके कारण इस देश के और, अपने आस-पड़ोस के देश के सांस्कृतिक जीवन में कोई परिवर्तन आया होगा। जो राष्ट्र को राजनैतिक दृष्टि से देखते आए हैं उनकी इच्छा शायद थोड़ी मात्रा में पूरी हुई, परन्तु जो राष्ट्र को संस्कृति की दृष्टि से देखते हैं वे तो यही मानकर चलते हैं कि आज भी हम सब एक हैं। हमें अलग करने की ताकत किसी में नहीं है। और लगता है कभी-कभी सांस्कृतिक बातों को लेकर चलने वालों पर राजनैतिक विचारधारा थोड़ा हावी हुई, प्रभावी हुई और इसके कारण देश का विभाजन हम सबको देखना पड़ा। कल्पना कीजिए कि जन्म हुआ तब मैं भारत का राष्ट्रीय नागरिक था। युवा होते-होते मैं पाकिस्तान का राष्ट्रीय नागरिक बन गया और प्रौढ़ावस्था में आते-आते मैं बांग्लादेश का राष्ट्रीय नागरिक बना। तो क्या राष्ट्रीयता ऐसे वर्षों-वर्षों में बदलती जाती है क्या? नागरिकता बदल सकती है, राष्ट्रीयता नहीं बदल सकती। नागरिकता तो बदल सकती है और इसलिए यह राज्य परिवर्तनीय है, पर राष्ट्र तो निरंतर चलता रहता है। अपने कई महापुरूषों ने कहा है। राजा आयेंगे, राजा जायेंगे। समाज चिरंतन चलता रहता है। समाज में कहीं परिवर्तन नहीं हैं, समाज, समाज रहता है। वह चिरंतन है, वह स्थाई है। राज्य अस्थिर कल्पना है। कभी उलट-पुलट होते हैं, बदलते हैं, नष्ट होते हैं, फिर पैदा होते हैं, फिर नष्ट होते हैं। यह प्रक्रिया चलती रहती है।

हम सब लोग मानते हैं कि लोग राष्ट्र-राज्य, इस कल्पना में अन्तर कर नहीं पाये और इसलिए राज्य बदलते हैं तो राष्ट्रीयताएं बदलती है। इसका विचार करना होगा। और इसलिए 1947 में कहा गया है कि एक नूतन राष्ट्र इस भूमि पर जन्म ले रहा है। नूतन राष्ट्र क्या होता है? हजारों वर्षों से यहां का समृद्ध जीवन चलता आया। उतार-चढ़ाव हमने जरूर देखे लेकिन कई बातों में परिवर्तन तो नहीं हुआ। आज भी हम थोड़ा विचार करें कि इन्टरनेट पर जाकर हम देख सकते हैं कि 'कल्चरल हिस्ट्री आफ पाकिस्तान' ऐसी एक वेबसाईट है। जो लिखता है कि पाकिस्तान तक्षशिला के प्रति गौरव का भाव व्यक्त करता है। व्याकरणकार पाणिनी ने इस भूमि पर जन्म लिया था, उसका वे वर्णन करते हैं। तो 'कल्चरल हिस्ट्री

आफ पाकिस्तान', 'कल्चरल हिस्ट्री आफ भारत' में कुछ अन्तर है क्या? ऐसी कई बातें हमको ध्यान में आयेंगी और इसलिए केवल राज्यों में परिवर्तन हुआ। दो राज्य अलग-अलग बन गये। यह एक राजनीतिक राष्ट्रवाद तो कह सकते हैं परन्तु क्या सांस्कृतिक दृष्टि से अलग हुए क्या? अलग होना संभव है क्या? और इसलिए कभी-कभी लगता है कि इन संकल्पनाओं को बहुत बड़ी मात्रा में स्पष्ट होने की आवश्यकता है। और राष्ट्र संकल्पना भी क्या है?

विश्व के कुछ चिन्तकों ने कहा कि राष्ट्र एक नकारात्मक कल्पना है। ये कैसे उनको लगा तो राष्ट्र कहने से एक प्रखरतावाद एवं अलगाववाद का भाव निर्माण होता है। हमारी सीमाएं, हमारे जहन में कट्टरता का जन्म होता है। इस भूमि पर, इस सीमा में रहने वाले अपने आपको कट्टर मानते हैं। दूसरों के प्रति असहिष्णुता का भाव निर्माण होता है। उस भूमि में रहने वाले जो अल्पसंख्यक माने जाते हैं उन पर अन्याय, अत्याचार करने का जाने-अनजाने में अधिकार प्राप्त होता है। और स्वाभाविक रूप से साम्राज्यवादी सोच, विस्तारवादी सोच, विकसित होती है। ये लोगों ने देखा है और ये सारी बातें जो हुई, वह राष्ट्र को लेकर हुई, राष्ट्र के नाम से हुई और इसलिए कुछ लोगों को लगा कि राष्ट्र की संकल्पना नकारात्मक है, युद्ध की तरफ ले जाने वाली है, संकुचित है, कट्टरता का भाव निर्माण करती है, असहिष्णुता का भाव निर्माण करती है।

इसके विपरीत भारतीय मनीषियों ने कहा कि यह अत्यन्त सकारात्मक है। हजारों वर्षों से अगर हम भारत के सन्दर्भ में देखते हैं तो भारत की राष्ट्र की कल्पना कभी नकारात्मक नहीं रही, सकारात्मक रही। हमारी संस्कृति ने, हमारे पूर्वजों ने, कभी भी इस राष्ट्र के नाम पर, कभी भी राज्य के विस्तार की कल्पना नहीं की। पूरा इतिहास निकालकर देखिए कि हमारे यहां से कोई भी सेना लेकर दूसरों की भूमि पर आक्रमण करने के लिए नहीं गया, एक भी ऐसी घटना हमको नहीं मिलती। छोटी-मोटी लड़ाईयां होती रही हैं। लड़ाईयां हुई तो आत्मरक्षा के लिए हुई। आक्रमण के लिए नहीं। परन्तु हम दुनियां में नहीं गये, ऐसा भी नहीं है। अपने पूर्वज, अपने मनीषी, अपने ऋषि-मुनि दुनिया के कोने-कोने में गये और वह एक सकारात्मक विचार, एक सांस्कृतिक सोच लेकर गये, जीवन-दृष्टि लेकर गये। यहां से कोई भी लेने के लिए गया, अपने इतिहास में ऐसा उदाहरण नहीं है। हम देने के लिए जाते हैं। तो भारत की राष्ट्र की संकल्पना में एक

सकारात्मक सोच है, सकारात्मक चिंतन है और हम लोग कहते हैं कि राष्ट्र की ये जो संकल्पना है जोड़ने वाली है, तोड़ने वाली नहीं। ये मूलभूत अन्तर विश्व के अन्य लोगों के बीच और भारत के लोगों के बीच से आता है और इसलिए **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** का नारा भारत के लोग ही दे सकते हैं। क्योंकि भारत की कल्पना भिन्न प्रकार की है तो **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** का नारा सारे विश्व को जोड़ने वाला सिद्ध होता है। इसलिए जिन्होंने राष्ट्र की संकल्पना को नकारात्मक दृष्टि से रखा, उन्हें इस बात को समझने की आवश्यकता है कि राष्ट्र की संकल्पना सकारात्मक भी हो सकती है। भारत उसका एक उदाहरण है तो इसलिए यह अनुभव हम सबको है, दुनिया को हमने यह अनुभव दिया है, हजारों वर्षों का यह अनुभव है।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के द्वितीय सरसंघचालक परमपूज्यनीय श्री गुरूजी ने इसके बारे में विचार रखते हुए कहा कि राष्ट्रवाद भी दो प्रकार का होता है। एक है सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और दूसरा है राजनैतिक राष्ट्रवाद। अब इसको भी समझने की आवश्यकता है। हम जब सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की कल्पना करते हैं, जो विचार रखते हैं तो यह सारी दुनिया के सामने मानवता का, मानवीयता का संदेश देने वाला विचार है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद शास्त्र के आधार पर, जीवन-मूल्यों के आधार पर, जीवनशैली के आधार पर, श्रेष्ठता के आधार पर और इसलिए हम लोग ही कह सकते हैं कि **'सर्वे भवन्तु सुखिनः'** हम लोग ही कह सकते हैं कि विश्व का कल्याण हो। यह घोषणा दुनिया में और किसी ने नहीं की, हम लोगों ने की है। जब हमने कभी घोषणा की होगी **'कुर्वन्तो विश्व आर्यम्'** तो कोई एक सम्प्रदाय को लेकर एक विचार को लेकर एक विषय को लेकर एक किसी पूजा पद्धति को लेकर नहीं कहा तो आर्य शब्द की विस्तृत व्याख्या करते हुए हमने कहा कि आर्य बनना नहीं, संस्कृति बनना है तो विश्व को संदेश देने वाला आज कौन है? इसको हमने कहा कि यह सांस्कृतिक राष्ट्रवाद है।

पूज्यनीय गुरूजी ने इसको स्पष्ट करते हुये कहा दूसरा जो है, राजनैतिक राष्ट्रवाद है। वह क्या संदेश देता है? वह राजनैतिक राष्ट्रवाद विस्तारवाद का संदेश देता है। साम्राज्य की विस्तार की कल्पना करता है। युवकों को निमंत्रण देता है। आक्रामक बनता है। वह अपनी सीमाओं को बढ़ाने लगता है। दुनिया के छोटे देशों को अपने प्रभावों में लाने की कोशिश करता है और इसलिए राष्ट्रवाद

का विचार करते समय हम भारत के लोग सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के समर्थक हैं, जो सकारात्मक है, जो मानवीयता की दृष्टि देने वाला है। राजनैतिक राष्ट्रवाद, ये नकारात्मक है। युद्ध को आमंत्रण देता है, यह दूसरों को समाप्त करने की चिन्ता करता है, अपना प्रभुत्व स्थापित करने का विचार करता है। इन दोनों विषयों में एक मूलभूत अन्तर है। यह समझने की आवश्यकता है।

इटली के मैजिनी ने बहुत अच्छी इस राष्ट्रीयता को लेकर उन्होंने कुछ सूत्र लिखे हैं। उसमें एक सूत्र है। वह सूत्र में कहते हैं कि प्रत्येक समूह वह जन शब्द का प्रयोग करते हैं। प्रत्येक जन यानि एक-एक नहीं। जन यानि समूह, अलग-अलग गुटों में लेने वाला समूह होगा। उस समूह का अपना एक जीवन का लक्ष्य होता है और वह जीवन का लक्ष्य मानवीयता का पोषण करने वाला, वह पोषण करने की जो प्रवृति है वह उस समूह की राष्ट्रीयता मानी जाती है। बहुत ही स्पष्ट उस मैजिनी ने अपनी कल्पनाओं को बहुत ही स्पष्ट किया है कि वह मानवीयता का पोषण करता है, वह उसकी राष्ट्रीयता है। परन्तु दुर्भाग्य रहा कि उनके ही देश इटली में फासीवाद का जन्म हुआ। जिन्होंने उस नकारात्मक राष्ट्रवाद को स्वीकार करते हुए सारे विश्व के सामने, मानवजाति के सामने एक समस्या निर्माण कर दी कि हमारे मार्ग से ही आपको चलना पड़ेगा। यह फासीवाद है। कभी-कभी लोग संघ को भी फासीवादी कहते हैं। वे क्यों कहते हैं, मुझे पता नहीं है अभी तक। लेकिन इस प्रकार की बहुत विचारों की स्पष्टता रखी गयी। अब कभी-कभी विचार आता है कि प्रमाणिकता से विचार करने वाले मैजिनी और हमारे यहां के ऋषि-मुनियों ने जो राष्ट्रवाद की कल्पना की उसमें अन्तर क्या है? वह एक ही भाव प्रकट कर रहा है और इसलिए सकारात्मक विचार करने वाले लोग जब कोई विचार रखते हैं तो भारत के विचारों के साथ मेल खाने वाला इसी प्रकार का चिन्तन हम सबके सामने आता है। आगे वे कहते हैं कि राष्ट्रवाद क्या है? वे कहते हैं राष्ट्रवाद एक सार तत्व है, आध्यात्मिक है। ये कल्पनाएं आध्यात्मिक हैं और विश्व कल्याण और मानव कल्याण की बात करने वाले हैं। इसका काम क्या है? तो यह कहा गया है कि समृद्ध और श्रेष्ठ परम्पराओं को दुनिया में बांटने के लिए जाना, ये राष्ट्रवाद का आध्यात्मिक सार है। श्रेष्ठ परम्परा, श्रेष्ठ संस्कृति और श्रेष्ठ जीवन-मूल्यों को दुनिया भर में बांटने के लिए जाना और सामंजस्य पूर्ण व्यवहार आपको श्रेष्ठ जनसमूह में होने चाहिए, मिलजुल कर रहना चाहिए यह संदेश देना,

ये राष्ट्रवाद की सकारात्मक दृष्टि है। ये मेरी निमित्त है और इसलिए स्वाभाविक रूप से इन सबको करते-करते हम सब की जीने की आकांक्षा बलवती करना, जीने की आकांक्षा क्यों? क्योंकि सकारात्मक वातावरण को स्थापित करने के लिए हम जियेंगे। मरने वाले लोग नहीं हैं। इसलिए हम कहते हैं कि मृत्युंजय भारत। मृत्युंजय भारत क्या होता है? मृत्युंजय भारत वह वास्तविक रूप से सारे दुनिया को सही दिशा देने वाला, कभी भी समाप्त न होने वाला, ऐसा अगर कोई राष्ट्र है तो वह भारत राष्ट्र है। इसका कई प्रकार के शब्दों में वर्णन किया गया है।

यहां पर लोगों ने राष्ट्र संकल्पना को समाप्त करने के लिए कोशिश की। अगर हम ईसाईयत और इस्लाम के सन्दर्भ में देखते हैं तो उन्होंने कहा कि सारे विश्व में अगर ईसाईयत स्थापित हो जाता है तो राष्ट्र कल्पना समाप्त हो जायेगी। राष्ट्र कल्पना नहीं रहेगी। क्योंकि सभी एक ही तत्व को मानने वाले हो जायेंगे। इस्लाम ने भी यही कहा है और ये इसाई और इस्लाम के जगत् ने इस राष्ट्र की कल्पना को नष्ट करने का प्रयास किया। परन्तु जो स्वाभाविक होता है वह कभी समाप्त नहीं होता, संकल्पनाएं समाप्त नहीं हुई, छोटे-छोटे इस्लामिक देश बनें। ईसाईयों को मानने वाले देश बने। आपस के संघर्ष चलते रहे क्योंकि राजनैतिक राष्ट्रवाद समाप्त नहीं हुआ। आज कहां इस्लाम को मानने वाले देश आपस में एक हैं? कहां तक हम राष्ट्रवाद की भावना समाप्त कर लेंगे? इसाइयत का क्या हुआ है। इसलिए दो प्रकार के प्रयत्न हुए। एक तीसरा प्रयत्न हुआ कम्यूनिजम के द्वारा। कम्यूनिजम ने कहा ये सारा विश्व एक है। इसमें दो ही प्रकार के लोग हैं। एक शोषण करने वाले और एक अत्याचार को सहन करने वाले। एक शोषित हैं और एक शोषक है, और ये उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय बात की। सारा विश्व एक अन्तर्राष्ट्रीय कोई किसी प्रकार का भेद नहीं। कोई संकुचितता नहीं। ये रखने का प्रयास किया। आज हम क्या देखते हैं आज हम देखते हैं कि कम्यूनिजम ही बंट गया। चीन का कम्यूनिजम एक है, रशिया का अलग है और भारत में अगर हम सारे कम्यूनिजम पार्टी का इतिहास देखेंगे तो कितने टुकड़े-टुकड़े होते गये और कहां अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक करने की बात करने वाले विचार छोटी संकुचित भिन्नताओं में बंट गये और ये स्वाभाविक है। ये होना ही था क्योंकि प्रकृति भिन्न रहती है, विचार भिन्न रहते हैं, जीवनशैली में भिन्नता रहती है, परन्तु वह जीवनशैली सकारात्मक हो इसके लिए प्रयत्न करने की आवश्यकता है। समान करने की आवश्यकता नहीं

है और इसलिए इस बात को अगर हम अनुभव करते हैं जिन्होंने राष्ट्रवाद की कल्पना को समाप्त करने की कोशिश की वह सब विफल रहे और किसी प्रकार से भी सफलता नहीं मिली क्योंकि वह अस्वाभाविक है। इसको भी समझने की आवश्यकता है। जैसा मैंने ये पहले कहा कि 1947 में राष्ट्र निर्माण की बात भारत में कही गई। ये राष्ट्र निर्माण का विचार भी कैसे आया? मैं किसी भी महान व्यक्तियों के लिए अपमानजनक शब्द का प्रयोग मेरे मन के अन्दर भी नहीं, मेरे अन्त:करण में भी नहीं और किसी के भी मन में नहीं होना चाहिए। इस देश के अन्दर राष्ट्रपति कैसे हो सकता है? राष्ट्राध्यक्ष हो सकते हैं। महात्मा गांधी जी का जीवन एक श्रेष्ठतम जीवन रहा है। उनके जीवन के आदर्शों पर समाज चले इसकी अपेक्षा है। ठीक है, कहीं विचारों में भिन्नता हो सकती है। परन्तु क्या भारत माता का ऐसा सुपुत्र कभी राष्ट्रपिता हो सकता हैं? महात्मा गांधी जी के प्रति पूर्ण श्रद्धा अन्त:करण में रखते हुए, इस कल्पना को कैसे जन्म दिया गया, यह सोचने का विषय है क्योंकि कल्पना यह चली कि अभी तक यह राष्ट्र नहीं था। हम राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में लगे हैं और राष्ट्र निर्माण में जिनका योगदान रहा उनको हमने राष्ट्रपिता कहा और इसको संचालित करने वाले को हमने राष्ट्रपति कहा। भाव शायद अप्रमाणिकता का नहीं होगा परन्तु दिशा एक थी। क्योंकि अपने देश का उस समय का नेतृत्व करने वाला वर्ग पश्चिम की विचारों से प्रभावित था और पश्चिमी विचारों से जो प्रभावित होता है तो सारी कल्पनाएं भारत की मूल कल्पना से हटकर और बाहर की कल्पनाओं को स्वीकारने वाला बनता है। राष्ट्रवाद की कल्पना उनके मन में जो पश्चिमी जगत ने रखी, वही उनके दिमाग में भी बैठी और इसलिए राजनैतिक राष्ट्रवाद को स्वीकार कर, मजहब के आधार पर पाकिस्तान की मांग को न वे रोक सके, न नकार सके क्योंकि राष्ट्र की कल्पना अलग है, क्योंकि सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की कल्पना अलग है और राजनैतिक राष्ट्रवाद की अलग। इसलिए सांस्कृतिक राष्ट्रवाद मन के अन्दर गहराई से बैठा रहता तो तत्कालीन नेतृत्व कभी भी इस देश के विभाजन को स्वीकार नहीं करता। परन्तु अपना दुर्भाग्य रहा कि उस समय के अपने नेतृत्व ने इसको गलत ढंग से लिया और भारत सांस्कृतिक दृष्टि से एक है, इस बात को भी छोड़ने की बात हमारे नेतृत्व ने की।

इसलिए भाषाओं के आधार पर प्रान्तों की रचना यह एक राजनैतिक राष्ट्रवाद

का संकेत है। अगर देश को राज्यों की रचना करनी थी तो परमपूज्यनीय श्री गुरुजी ने उस समय कहा कि यह प्रशासनिक सुविधाओं के आधार पर करना चाहिए, न कि भाषाओं के आधार पर। पर हमने भाषाओं को इकाई माना। और भाषाओं को इकाई मानकर सब प्रकार के राज्यों की रचना की। और आज हम कहते हैं कि ये संघ राज्य हैं। फैडरेशन आफ स्टेट्स क्या है? कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक और राजस्थान की सीमाओं से लेकर उत्तर पूर्व के पहाड़ियों तक फैला हुआ क्या सांस्कृतिक दृष्टि से देश एक नहीं है। परन्तु राजनैतिक दृष्टि से इसका विभाजन किया। उसके परिणाम आज हम भुगत रहे है।। आज भी भाषाओं के आधार पर दो राज्य आपस में संघर्ष करने के लिए खड़े होते हैं। आवश्यकता है किसी भी राज्य में रहने वाले आपस में सांस्कृतिक एकता को अपने जीवन के मूल्यों को, जीवन की शैली को समझकर छोटी-मोटी सुविधाएं मांग सकते है। लेकिन आपस में संघर्ष का कारण एक ही रहा कि राजनैतिक दृष्टि से हमने उसको अलग-अलग टुकड़ों में बांटा। तो इसलिए बहुत संघर्ष होते हैं। फिर यह हमारा राज्यों का अधिकार है। चाहे हमारा कुछ भी हो। उसके चलते कई प्रकार के क्षेत्रीय दल खड़े हुये। क्षेत्रीय दल कहते हैं कि दिल्ली में कुछ भी हो हमारी राज्य की मांग पूरी होनी चाहिए। क्षेत्रवाद क्यों बढ़ा? भाषाओं के आधार पर अस्मिताएं जागृत करते हुए दूसरी भाषाओं के बारे में अश्रेष्ठता का भाव क्यों बना? राजनैतिक दृष्टि से ही इन बातों की तरफ देखा गया। हम सबका बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण इतिहास कुछ वर्षों का है। परिणाम क्या हुआ। इस प्रकार के राज्यों को इस आधार पर विभाजित करना ये अपने देश की एकात्मता के सामने चुनौती बन गया है। फिर इसके आगे चलते हैं और भी संकुचित और भी छोटी-छोटी बातें उभर कर आने लगी। लोग मांग करने लगे कि हमको खालिस्तान चाहिए। अब एक मांग और उठ रही है कि हमको द्रविडस्तान चाहिए जो विभिन्न लोग है, वनवासी लोग हैं उनका अपना अलग राज्य चाहिए, अलग देश चाहिए। उत्तर पूर्व के क्षेत्र में ग्रेटर नागालैण्ड को लेकर मांग उठती है कि हमारा नागाओं का स्वतंत्र राज्य होना चाहिए। इस प्रकार की एक राजनैतिक सोच विकसित होती गई। अस्मिताएं बढ़ती गई और सारे देश की एकात्मता के सामने आज चुनौती के रूप में हम सबके सामने हैं। थोड़ा-थोड़ा अध्ययन करेंगे तो ध्यान में आता है कि इसके पीछे विदेशी शक्तियां विभेदकारी विचारों को जन्म देने के लिए काम करने वाली विदेशी शक्तियां

सक्रिय हैं। उस विदेशी शक्तियों को समझकर उन बातों को हम लोग कैसे सीखें?

अभी-अभी 9 अगस्त को यू एन ओ ने एक प्रस्ताव पारित किया कि एक ट्राईबल डे मनाया जायेगा। आदिवासी दिवस। और भारत के अन्दर प्रचारित करने का एक निरन्तर कुछ वर्षों से लगातार प्रयत्न चल रहा है कि भारत के मूल निवासी कौन हैं और जिनको हम अनुसूचित जनजाति के लोग मानते हैं, वह यहां के मूल निवासी हैं। जो गरीब हैं वह मूल निवासी हैं। जिनको दलित माना जाता है वह मूल निवासी हैं। बाकि सब बाहर से आए हैं। इसके आधार पर संघर्ष का वातावरण कौन कर रहा है। जो भारत को समृद्ध होते हुए देखना नहीं चाहते। जो भारत की राष्ट्र की सकारात्मक सोच लेकर चला हुआ जो देश है उस देश को दुर्बल बनाने के लिए राजनैतिक भूमिका को ही विश्व के मंच पर जिन्होने स्थापित करने का संकल्प लिया वह इन षडयंत्रों के पीछे है। और इसलिए यह एक राजनैतिक दृष्टि से राष्ट्रवाद। संकुचितता बढ़ाने वाली और यह हम सबके लिए विचार करने वाली बात है। और इसलिए वह समझ लें। भारतीय राष्ट्रीयता के बारे में कहा गया कि यहां की संस्कृति से जुडा हुआ है। और ये यहां की राष्ट्रीयता और यहां की संस्कृति। जब हम कहते हैं कि भारतीय संस्कृति और भारतीय राष्ट्रीयता तो इसका वैकल्पिक शब्द नहीं, उसका दूसरा शब्द है हिन्दू संस्कृति और हिन्दू राष्ट्रीयता। ये कोई मजहब का विषय नहीं है। इस्लामिक राष्ट्र, इस्लामिक विषय यह मजहब हो सकता है हिन्दू राष्ट्र और हिन्दू संस्कृति ये मजहब नहीं हो सकता। क्योंकि हिन्दू कोई मजहब नहीं है। कौन समझाए इनको। क्यों ये हिन्दू के मजहब के नाम से क्या हिन्दू की कोई पद्धति है। हिन्दू का कौन सा भगवान एक है। हिन्दू का कौन सा एक ग्रंथ है। सम्प्रदाय, मजहब तो वह होते हैं जिनका ग्रन्थ एक होता है, जिनकी पद्धति एक होती है, जिनके पूजा के स्थल एक होते हैं। हिन्दू समाज में तो विविधता भरी हुई है। ये संस्कृति है। और इसलिए यहां की राष्ट्रीयता का विचार और इसलिए हम तो सभी कहते हैं कि इस देश में रहने वाले किसी भी सम्प्रदाय के हों वह इस्लाम को मानने वाले हों, इसाई को मानने वालें हों, मूलतः वह इसी देश के हैं। इसी देश की वह संतति है। ये उन्होंने भी मानने की आवश्यकता है कि हम मूलतः इसी देश की संतति है। बाहर से आए हुए लोगों ने उसका उस भाव को प्रकट और सशक्त करना है तो उसका एक ही सूत्र है हम सबके पूर्वज एक हैं । हम सब के पूर्वज कोई अलग-अलग नही हैं। इस बात को

मानना पड़ेगा। लोग कहते हैं आज भारत में रहने वाला, इस्लाम को मानने वाला, भारत में रहने वाला, इसाईयत को मानने वाला दस पीढ़ी, ग्यारह पीढ़ी, बीस पीढ़ी पीछे चला जाय कौन है। लेकिन इस प्रकार के गलत विचारों को लेकर चलने के कारण इसी देश के मूल निवासी होने के बाद भी इसी देश के संत भी अपने आपको न मानने के अभाव में न भारत माता की जय कहते हैं न भारत के बारे में सोचते हैं और इस प्रकार की दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति हो गई। अगर भारत में रहने वाले किसी भी सम्प्रदाय किसी भी पूजा पद्धति को मानने वाले अगर इस बात को स्वीकार कर लेते हैं कि हम इसी देश की संतति हैं और हमारे सब के पूर्वज एक हैं तो सारे संकुचित और संघर्ष के विषय समाप्त हो जायेंगे। इसकी आवश्यकता है और इसको करना पड़ेगा। एक और बात आती है सारे देश को जोड़ने वाला एक ही विषय है और वह है भारत माता की पूजा। भारत माता यही हमारी देवता है। ये सारा समाज माने। और इसलिए इस बात को एक रखने की आवश्यकता है। एक बात और ध्यान में आती है कि कई प्रकार की बातों के कारण हम अपने कौन, पराये कौन इसको भी हम कभी-कभी भूल जाते हैं।

अपने कौन हैं, पराये कौन है, दुर्भाग्य से हमने आक्रान्ताओं को भी अपना माना। जो आक्रमण करने के लिए आए हैं। आक्रांताओं ने यहां पर स्थापित की हुई बातें गुलामी की प्रतीक हैं उनको मिटाना चाहिए और यहां की प्रतिमाओं को प्रवृत करना चाहिए। नहीं हुआ। जो मुगल सम्राट बाहर से आक्रांता के रूप में आए। उन्होंने अपने विजय के प्रतीक के रूप में कुतुब मीनार बनाया। हम बड़े शान से शौक से देखने के लिए जाते हैं। और कहते हैं कि भारत का गौरव देखिए कुतुब मीनार। भारत में आक्रमण करते हुए आक्रांताओं ने अपने नामों को यहां पर रखा। क्या होता है दिल्ली का कनॉट प्लेस, क्यों है, अभी तक नाम रखा हुआ। कौन है कनॉट? आज अगर बच्चे पूछेंगे कनॉट कौन है तो हम बता सकते हैं क्या? तो अपना पराया कौन?

दिल्ली में जहां पर शासन के शासकीय प्रतिनिधि रहते हैं, शासन को चलाने वाले लोग रहते हैं, शासन का कारोबार जहां से चलता है उस सारे एरिया का नाम है नार्थ एवेन्यू और साउथ एवेन्यू। ये क्या है, नार्थ एवेन्यू और साउथ एवेन्यू? अंग्रेज जब यहां पर थे उन्होंने बसाया था नार्थ एवेन्यू, साउथ एवेन्यू । तो हमने सारे गुलामी के प्रतीकों को अपना माना, पराया नहीं माना। अयोध्या में ढांचा बनता है

और अयोध्या का ढांचा यहां के बहुत से लोगों को अपना लगता है, और उसको विरोध करने वाले लोग संकुचित माने जाते हैं। अरे, उसे आक्रांता ने यहां पर बनाया। उस आक्रांता की बनायी हुई चीजों को शीघ्रता से दूर करना चाहिए कि बनाये रखना चाहिए? देश की अस्मिता का भाव, राष्ट्रीयता का भाव, हम एक है यह भाव कैसे जागृत होगा? और इसलिए अपने और पराये लोगों का विवेक इस देश में दुर्भाग्य से नहीं रहा। अपने देश में राम मन्दिरों की कोई कमी नहीं है। और इसलिए एक और राम मन्दिर बनाकर हम राम मन्दिरों की संख्या में बढ़ोत्तरी करना नहीं चाहते। फिर राम मन्दिर का आग्रह क्यों? क्योंकि जब समाज के सामने, देश के सामने अपना और पराया इसका विवेक जब समाप्त हो जाता है, और जब लोग आक्रांताओं को भी अपना मानने लगते हैं और इसके कारण कई समस्याएं पैदा हो जाती हैं, तब राष्ट्रीयता का भाव जागृत करना अनिवार्य हो जाता है।

लोग कहते हैं कि किसी दल को सत्ता प्राप्त होने के लिए राम मन्दिर का मुद्दा उठाया जाता है। नहीं, राम मन्दिर इस देश की करोड़ों जनता के हृदय की राष्ट्रीयता का प्रतीक है। इसका विवेक, इसका विचार स्थापित करना पड़ेगा। और इसलिए इसका विरोध करने वाले राजनैतिक दृष्टि से सोचते हैं। उनके मन और दिमाग में राजनैतिक राष्ट्रवाद है। मतों की गिनती के आधार पर विचार किया जाता है। और जो सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को मानते हैं। वह किसी को अच्छा लगे या गलत लगे, पर जो सही है, जो उचित है, उसी को रखने का प्रयास करते हैं। इन बातों को समझने की आवश्यकता है। हमने अंग्रेजी को अपनी भाषा मान लिया। हमने कहा न, कि अपना पराया समझ में नहीं आता। हम किसी भी भाषा के विरोधी नहीं है। होना भी नहीं चाहिए। विविध प्रकार की भाषाएं हम सीखें। परन्तु हम अगर एक विचार करें कि अगर भारत को समझना है तो क्या भारत को विदेशी भाषाओं के माध्यम से समझ सकेंगे। अपने प्राचीन गौरव का एक विश्वास मन में जगाते हुए उस राष्ट्रभाव को अगर पुष्ट करना है तो यहां की भाषाओं में लिखे हुए ग्रन्थों को समझना ही पड़ेगा। तो हिन्दी का आग्रह, संस्कृत का आग्रह ये साम्प्रदायिक कैसे हो जाता है? राष्ट्रवाद को एक सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को बलवान करने वाला, पुष्ट करने वाला ये विचार है कि यहां का अध्ययन, यहां की भाषाओं में होना चाहिए। मैं एक बार फिर कहना चाहूंगा कि हम अंग्रेजी के

खिलाफ नहीं हैं। अंग्रेजी भाषा सीखें, अंग्रेजी अच्छी बोलनी आनी चाहिए। अंग्रेजी समझ में आनी चाहिए। क्यों? क्योंकि दूसरों के विचार क्या हैं ये भी तो हमें समझना चाहिए। तभी तो हम अपना और पराया अलग कर सकते हैं। इजराईल का उदाहरण हम सबके सामने हैं। इजराईल की स्वतंत्रता भी भारत के साथ हुई ही है। एक ही समय अस्तित्व में आया है। दुनियां के कई प्रकार के बिखरे हुए देशों से जो व्यक्ति अपनी सारी सम्पदा के छोड़कर इजराईल में गया है। इजराईल कोई बहुत प्रसन्नता देने वाला स्थान नहीं था। रेगिस्तान है, पानी की कमी है, जमीन की कमी है सब प्रकार की कमी है, शत्रुओं से घिरा हुआ है तो भी दुनिया भर में फैले हुए यहूदी वहां आ गए। यहूदी जो हजारों वर्षों से, दो-दो हजार, ढाई-ढाई हजार वर्षों से विदेशी जमीन पर रहे और वहां की भाषा और सभ्यता को अपनाया, परंतु जैसे ही इजरायल अस्तित्व में आया, वह सभी अपनी संपदा छोड़ कर इजरायल पहुंचे और सभी ने पहला निर्णय यह लिया कि अपना कारोबार-व्यवसाय हिब्रु भाषा में करेंगे। आज इतने 50-60 वर्षों में एक उन्होंने अपनी हिब्रु भाषा को समृद्ध स्थान प्राप्त करा दिया। अभी एक परिचित मित्र इजरायल में गये। आए थे तो मिलना हुआ। उन्होंने कहा कि बड़ा कठिन है। मैं कुछ अंग्रेजी में पूछता हूं तो सामने से जवाब हिब्रु में आता है। मैं पूछता हूं कि मैं समझता नहीं हूं। जब तक आपको समझ में नहीं आयेगा तब तक आप पढ़ो। आपको हिब्रु सीखना पड़ेगा। आपको अगर यहां रहना है तो हिब्रु सीखना पड़ेगा। समझना है तो हिब्रु सीखना पड़ेगा, हिब्रु बोलना पड़ेगा। उस अपने मित्र ने कहा कि मैंने दूसरे दिन से हिब्रु क्लास ज्वाईन कर लिया। क्योंकि उसके बिना मैं वहां रह ही नहीं सकता। ये अतिरेक नहीं है। ये अतिवाद नहीं है। ये असहिष्णुता नहीं है। ये राष्ट्रीय अस्मिता का प्रश्न है। इसको ही सांस्कृतिक राष्ट्रवाद कहते हैं। अपने क्या हैं? अपने को सुरक्षित रखते हुए आगे चलना।

और जब मैं कहता हूं कि सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की बात आती है तो भारत के चिन्तन में, फिर बार-बार मैं कहूंगा कि सकारात्मक चिन्तन ही नहीं, एक भावात्मक चिन्तन है, सबको जोड़ने वाला है, मानवीयता का दृष्टिकोण का संदेश देने वाला सांस्कृतिक राष्ट्रवाद भारत का है। और इसलिए कई प्रकार की बातों को हम सब लोगों को समझने की, स्मरण करने की आवश्यकता है। एक बात और है। संस्कृति क्या है? इसको भी समझने की आवश्यकता है। जब हम राष्ट्रवाद की

बात करते हैं तो इसका संबन्ध संस्कृति से आता है। इसमें भी भारत की संस्कृति की कल्पना और विदेषों की संस्कृति की कल्पना में अन्तर है। भारतीय जब हम कहते हैं कि संस्कृत है तो भारत की संस्कृति व्यक्ति को स्थिर करती है। उसकी अस्थिरता समाप्त होती है। भारत की संस्कृति अगर सारे विश्व के साथ चलना है तो सीखती है कि लचीलापन रखो। जब सबको साथ में लेकर चलना है तो कोई भी विचार, कोई भी समाज रिजिड होकर नहीं चल सकता, उसको लचीलापन रखना पड़ता है। क्या छोड़ना क्या नहीं छोड़ना इसका विवेक जरूर चाहिए। इसलिए एक बात आती है कि भारतीय संस्कृति बहुत कम विस्तारवादी है, बहुत कम साम्राज्यवादी है। यह भारतीय संस्कृति है। और इसलिए यहां की संस्कृति का मनन और यही हमारी सांस्कृतिक राष्ट्रवाद है। इसी को हमने जिस संस्कृति को लेकर हम चले उसको लेकर चलना यही संस्कृति राष्ट्रवाद है। पश्चिमी संस्कृति क्या है? पश्चिमी संस्कृति के बारे में कहा गया कि वह मूलत: अस्थिर है। व्यक्ति को स्थिर नहीं करती है। और अस्थिरता का परिणाम होता है कि वह आक्रामक बनता है। दूसरों के बारे में असहिष्णु बनता है। विस्तारवादी बनता है। सारे दुनिया का इतिहास देखिये और भारत पश्चिमी जगत की संस्कृति यह उस समाज को, उस समूह को राजनैतिक राष्ट्रवाद की तरफ ले जाती है। जबकि भारत की संस्कृति सांस्कृतिक राष्ट्रवाद ओर ले जाती है। इस मूलभूत अन्तर को स्थापित करना है इसको भी बल देना है। आज अगर हम सारे दुनिया में देखें कि अस्थिरता का कारण क्या है। हिंसा है। साम्प्रदायिक तनाव है। जाति का छोटे-छोटे समूह में विभाजन हुआ है। केवल भारत में नहीं। भारत के बाहर भी एक संकीर्ण सोच विकसित हुई है। आज के अशांति के कारण यही चार-पांच बातें हैं। असहिष्णुता है, हिंसा का मार्ग अपनाकर चलते हैं, आक्रामक बनते हैं, विस्तारवादी विचार को लेकर चलते हैं एक संकीर्ण सोच को लेकर चलते हैं। ये आज के सारे विश्व में अस्थिरता का कारण यही हो जाता है। और एक चिन्तन चला है। क्या आज सारी दुनिया धर्म रहित होनी चाहिए। एक विचार चला है, नया विचार। सारा विश्व, राष्ट्र-रहित होना चाहिए। कोई राष्ट्र वगैरह नहीं रहेगें। धर्म रहित होगा, राष्ट्र रहित होगा, ऐसा विश्व कुछ लोग आज देखना चाहते हैं। हम कल्पना करें कि क्या यह स्वाभाविक है क्या? धर्महीनता मनुष्य को पशुता की तरफ नहीं ले जायेगी? क्या यह एक राष्ट्र रहित कल्पना भिन्न भिन्न प्रकार की विचारधाराओं को सुरक्षा कैसे

प्रदान करेगी? और इसलिए यह अस्वाभाविक है, यह संभव भी नहीं हैं क्योंकि यह प्रकृति के खिलाफ है। और इसलिए यह चिन्तन भी क्यों चला। जब इसके मूल में जाते हैं तो इसका परिणाम यह होगा कि जो सामर्थ्य, सम्पन्न, शक्तिशाली होगा उसकी बात चलेगी क्योंकि धर्म नहीं, राष्ट्र नहीं, सीमा नहीं, वह जो शक्तिशाली है, उसका वर्चस्व है। दुनिया में अपना वर्चस्व स्थापित करने का राक्षसी विचार है वही राष्ट्र रहित, धर्म रहित की बात कर रहे हैं क्योंकि हम दुनिया के स्वामी बनना चाहते हैं।

जो मैं मानता हूं उसी मान्यता पर आपको चलना पड़ेगा। यह राष्ट्र रहित, धर्म रहित, संस्कृति रहित, परंपरा रहित मानव की बात करने वाले कहीं न कहीं इस मानसिकता के एक कोने में विचार को लेकर चले हैं कि हम शक्तिशाली बनेंगे, हमारा ही वर्चस्व होगा। सारी दुनिया को हमारे ही रास्ते से चलना पड़ेगा। ये कौन सा राष्ट्रवाद है, ये कौन सा विचार है, ये कौन सा भाव है? इसलिए पं. दीनदयाल जी ने कहा कि सांस्कृतिक राष्ट्रीय एकात्मता का आग्रह रखना चाहिए। राजनैतिक राष्ट्रवाद से हटकर हम सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को बलवान करते जायें और राष्ट्र की एकात्मता बनी रहे इसका आग्रह पंडित जी के अन्यान्य कई प्रकार के भाषणों में प्रस्तुत करते समय वह इसी बात को लेकर आग्रहपूर्वक कह रहे हैं। इसलिए पंडित जी की सोच में एक मूलभूतताएं हैं। और इसलिए प्रश्न आता है आज हम अगर भारत के बारे में सोचते हैं तो ऐसे विभेदकारी चिन्तन रखने वाले वह कैसे असफल हो गये। इसके लिए हमको सोचना पड़ेगा कि जो इस देश के अन्दर भेद का ही बीज बोकर और समाज को आपस में संघर्ष करने के लिए लगा रहे हैं और सांस्कृतिक बातों को गुरुत्व मानकर, एक दकियानूसी मानकर उनके उपर टीका टिप्पणी करते हुए जो समाप्त करने के लिए लगे हुए हैं और समाज का विवेचन बना रहे, संघर्ष चलता रहे उसी पर हमारा राजनैतिक स्वार्थ सिद्ध होने वाला है ऐसी विभेदकारी देश के अन्दर की और देश के बाहर की शक्तियों के बारे में हमको जाग्रत करना पड़ेगा। और उनके प्रयासों को असफल करने की दिशा में हमको चलना पड़ेगा। एक शब्द का प्रयोग दीनदयाल जी ने स्थापित किया है। वे कहते हैं कि इस प्रकार के राष्ट्र के बारे में मन के अन्दर भाव रहना। तो मैंने पहले ही कहा कि एक जन, एक भूमि, एक विचार लेकर चलने वाला, मानव कल्याण का विचार करने वाला, वह जो राष्ट्र का भाव है उसको पं. दीनदयाल जी ने चिति

शब्द का प्रयोग किया है। ये देश की चिति है। तो भारत की चिति क्या है? भारत का मानस क्या है? तो भारत का मानस यही है कि जो मैजिनी ने कहा, जो यहां के ऋषि-मुनियों ने कहा, जो पं. दीनदयाल जी ने कहा कि हम विश्व के कल्याण की कामना करने वाले इस प्रकार का राष्ट्र के रूप में हम हैं। इसलिए यह भाव श्रेष्ठ भाव है। श्रेष्ठ भाव का पोषण करना ही पड़ेगा। और इसलिए जब हमने देखा कि अनुकूल बातें होती गई तो भारत का उत्थान हुआ। जब-जब इस चिति के प्रतिकूल वातावरण बनता गया तब-तब भारत का पतन हुआ है। इसलिए चिति की प्रतिकूलता, अनुकूलता का परिणाम भारत के उत्थान और पतन के साथ जुड़ा हुआ है। इसलिए चिति को जागृत रखना है, इस भाव को बनाये रखना है, इस भाव को पुष्ट करना है। विश्व के कल्याण की कामना करने वाला चिंतन ही विश्व के मंच पर शक्ति के साथ खड़ा रहेगा यही संदेश है, यही चिति है भारत की। परन्तु इस भाव को इस चिति को समझकर ही अपनी आत्मा को समझकर, अपनी इस भूमिका को समझकर मानने वाला समाज अगर खड़ा होता है तो उसके लिए वह शब्द प्रयोग करते हैं कि ऐसी एक जागृत संघ की शक्ति के लिए उन्होंने शब्द का प्रयोग किया 'विराट'। यह दो शब्द प्रयोग विशेष रूप से पंडित जी के सारे साहित्य में आते हैं एक चिति और एक विराट। चिति हमारी भूमिका है, चिति हमारी मानसिकता है और इसको समझकर संघ की, शक्ति के रूप में खड़ा होने वाला समाज उसको उन्होंने विराट शब्द का प्रयोग किया है। और इसलिए चिति और विराट को समझना होगा। पर कभी कभी लगता है कि विविधता को भी लोगों ने भेदता का कारण बनाया है। हमारी चिति अगर सबकी है, एक ही चिति के हम लोग हैं तो उपर के भेदों का कोई महत्व नहीं है। पंडित जी कहते हैं कि विविधता ये हिन्दू चिन्तन की, हिन्दू समाज की, हिन्दू समूह की, विशेषता है। लोगों ने इसको भेद बताया है। आप कपड़े ऐसे पहनते हैं, आप कपड़े वैसे पहनते हैं, ये भाषाएं, वो भाषाएं, आपका ये खानपान है, आपका वो खानपान है, आप एक कैसे हो सकते हैं। अपनी विचारधारा के विरोधी विचार करने वालों ने इस विविधता को भेद के रूप में प्रस्तुत किया। पंडित जी इस भेद को सौन्दर्य के रूप में प्रस्तुत करते हैं। यही हमारा सौन्दर्य है। फूलों का हार होता है, पुष्प गुच्छ होता है तो उसमें कभी एक रंग के फूल नहीं होते, उसमें विविध रंगों के फूल होते हैं, विविध प्रकार के फूल होते हैं, वही पुष्पहार मन को आनन्द देता है। पर कोई कहेगा कि यह हार तो

भिन्न-भिन्न फूलों का बना हुआ है। ये हार कैसे हो सकता है। एक हार मतलब एक रंग के फूल चाहिएं। एक समान नहीं बनाना है। एक बनाने की बात है। परन्तु हम लोग एक समान बनाने की दिशा में प्रयत्न करते हैं। पंडित जी कहते हैं कि एक जैसे होने की आवश्यकता नहीं। एक होने की आवश्यकता है। ये विविधता उसका भेद का कारण नहीं बनना चाहिए। लोगों ने इसको पृथकता माना। जो इसको पृथकता मानते हैं विविधता की वह एक विकृति है। बहुत कठोर शब्दों में पंडित जी ने कहा है कि इस विविधता को और भेद मानने वाले, अलग मानने वाले एक मानसिक विकृति के शिकार हैं। होना क्या चाहिए, विविधता में आनन्द लेना चाहिए। और इस दृष्टि से जब हम कहते हैं कि भारत सांस्कृतिक दृष्टि से एक है। उपर कई प्रकार की भिन्नताएं हो सकती हैं। भाषाएं अलग हो सकती हैं। हम अनुभव कर सकते हैं कि कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक चारों दिशाओं में घिरा हुआ ये जो अपना समाज है उस समाज की कई प्रकार की मान्यताएं हैं। एक जैसी नहीं हैं, भाषाएं एक नहीं है, वेष एक नहीं हैं, खान-पान की शैली एक नहीं है। परन्तु जीवन के मूल्य एक हैं। भारत के कहीं पर भी जायेंगे प्रामाणिकता जीवन का मूल्य है, परिश्रम जीवन का मूल्य है, नैतिकता जीवन का मूल्य है। अन्याय का विरोध करने वाले न्याय के पक्ष में खड़े रहने वाले इसको हमने मूल्य के रूप में स्वीकार किया है। इसी को सांस्कृतिक राष्ट्रवाद कहते हैं। यह हमारी सबकी एक है। और इसलिए विस्तार से इन सब बातों को पंडित जी ने हम सबके सामने रखा। इसको समझने की आवश्यकता है। और इसलिए आज अगर कोई कहता होगा कि भारत संघ राज्य है, हम कहते हैं कि राज्यों की व्यवस्था है, भारत सांस्कृतिक दृष्टि से एक राष्ट्र है। ये राष्ट्रवाद का मूल विचार इसको लेकर चले हुए हम लोग भारत को इस प्रकार से उपर दिखने वाले हाथों के आधार पर अलग-अलग स्थापित करने का प्रयास लोग कर रहे हैं। मैनें पहले ही कहा द्रविड़स्तान की मांग करते हैं, खालिस्तान की मांग करते हैं, नागालैण्ड की मांग करते हैं। ये बाहरी विविधता को देखकर हम अलग हैं इस प्रकार का भाव निर्माण करने का, बीज बोने का गलत काम करने वाली शक्तियां भारत के अन्दर सक्रिय होती रही हैं। ये सब प्रश्न सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के सामने चुनौती के रूप में खड़े होते हैं। इसको भी हमको समझने की आवश्यकता है। हम मानते हैं कि एक वृहद भारत में कई प्रकार के राष्ट्रवाद की चर्चा चली। कोई कहता है कि यूरोपीय राष्ट्रवाद है, कोई

अफ्रिका का राष्ट्रवाद है ऐसे अलग-अलग प्रकार के राष्ट्रवाद की चर्चा चली। अगर हम दक्षिण एशिया के बारे में बात करते हैं तो दक्षिण एशिया के बारे में कहा गया यहां पर भारतीय राष्ट्रवाद है। भारतीय राष्ट्रवाद। ठीक है, हम बहुत पुराने काल में नहीं जा सकते, परन्तु एक वृहद भारत । इस नाम से हम कभी-कभी शब्द प्रयोग करते हैं। हम कहते हैं कि कभी अफगानिस्तान को गांधार, गांधारी वहां से आती थी। हम कहते हैं कि लंका में राम रहे, राम गये वहां पर। वह लंका को जीतने के लिए नहीं गये थे। राक्षसी रावण की प्रवृति को पराजित करने के लिए गये थे। लंका को जीतने के लिए जाते तो अपना राज्य स्थापित करके आते। नहीं, वह वापस आ गये। क्यों? क्योंकि लंका भी इस वृहद भारत का हिस्सा है। राजनैतिक दृष्टि से अलग है, पाकिस्तान अलग है, बांग्लादेश अलग है, राज्य तो अलग-अलग हैं। परन्तु जैसे सांस्कृतिक दृष्टि से, जैसा कि मैंने कहा कि पाकिस्तान को 'कल्चरल हिस्ट्री आफ पाकिस्तान' उसमें वही बातें लिखनी पड़ी जिसके बारे में हमें भी गर्व है। आज भी अगर कोई कश्मीर, पाकिस्तान के अगर कोई तीर्थक्षेत्रों का नाम लेगा तो उनमें ननकाना साहिब का नाम आयेगा। उनमें कराची के आस-पास रहने वाली हिंगलाज माता का नाम आयेगा, बांग्लादेश के ढाकेश्वरी देवी का नाम आयेगा और वहां के लोगों को अजमेर शरीफ दरगाह अपना लगता है।

ये जो एक है खत्म होने वाला है क्या? और ये वृहद भारत जिसका एक कहीं न कहीं एक चिन्तन रहा है, एक जीवन की शैली रही है। हम सबकी बातें कई समान हैं। उन समान बातों को जागृत करते हुए इस सांस्कृतिक बातों के आधार पर ही जब कोई किसी अखण्ड भारत की बात करता है तो अखण्ड भारत की बात एक सांस्कृतिक मूल्यों के आधार पर, सांस्कृतिक बातों के आधार पर ही या सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की कल्पना के आधार पर ही यह देश अखण्ड हो सकता है। हम राज्यों के अखण्ड होने की बात नहीं करते। आज भी नहीं करेंगे। और इसलिए ये कैसे होगा। तो इस चिति को समझकर, उसके मूल भाव को समझकर इस विराट राज्य जैसा कि मैंने कहा सारा इन बातों को मानने वाला समाज है, एक मनुष्य समूह है। वह उसको कभी न कभी मानता आया है। उसको संगठित शक्ति के रूप में जगाकर ही ये वृहद भारत हो सकता है। प्रयास करना पड़ेगा भविष्य में, उस दिशा में। सांस्कृतिक बातों को जगाते हुए चलना पड़ेगा। उस विराट को जागृत

करना पड़ेगा यानि समाज को जागृत करना पड़ेगा। समाज को संगठित करना पड़ेगा। राजनैतिक राष्ट्रवाद की उपेक्षा करते हुए चलना पड़ेगा। और इसलिए हम लोग भारत के अन्दर तो प्रयास करते ही हैं। मैं कभी-कभी सोचता हूं कि इतने सारे देवी देवता होने के बाद भी ये भारत माता की जय कहां से आ गया। ये अगर हम देखेंगे तो 1857 के पहले शायद ये नारा नहीं था। यह तो जब देश के अन्दर स्वतंत्रता आन्दोलन शुरू हुआ, इस आन्दोलन में एक राजनैतिक राष्ट्रवाद को समाप्त करते हुए फिर एक बार भारत को खड़ा करना है। जब यह भाव मन के अन्दर आया होगा तो किसी न किसी के दिमाग से निकला कि एक ही मार्ग है भारत माता की जय कहने के लिए बताओ। सारे समाज के सामने ये विषय रखा गया। स्वामी विवेकानन्द ने कहा कि आने वाले दो सौ, ढाई सौ, चार सौ वर्षों तक सारे अपने देवी-देवताओं को कपड़े में बांधकर रख दो। एक ही देवता का पूजन करो। वह देवता है भारत माता। ये है भारत माता जी जय। भारत माता की जय का यह भाव जितना पुष्ट होता जाएगा उतना सांस्कृतिक राष्ट्रवाद जागृत होगा और पुष्ट भी होगा। कोई भी मजहब के आधार पर, सम्प्रदाय के आधार पर, राजनैतिक दृष्टि से आज हावी हुआ लगता है। लेकिन इससे मुक्त होने का मार्ग इस सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को ही जागृत करने की आवश्यकता है। और इसलिए भारत माता की जय। भारत माता को ही देवता मानना।

बंकिमचन्द्र चटर्जी ने जब वन्दे मातरम लिखा। आनंन्द मठ में जब वन्देमातरम आया। किस मातृभूमि को वन्दना करने की बात कही गयी। इस मातृभूमि की वन्दना करते-करते इस मातृभूमि के प्रति, इस भूमि के प्रति, यहां की संस्कृति के प्रति, यहां के मूल्यों के प्रति श्रेष्ठ भाव का मन के अन्दर जागरण होगा, वही शक्ति के रूप में वन्देमातरम का महत्व है। और इसलिए इस सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को बलवान करने के लिए, इस भाव को पुष्ट करने के लिए जो-जो भी प्रयत्न चल रहे हैं यही सही दृष्टिकोण विकसित करना। कभी कभी लगता है कि लोग भारत माता की जय करने का विरोध क्यों करते हैं। विरोध वही करते हैं तो इस भूमि को मां नहीं मानते, विरोध वही करते हैं जिन्होंने इस भूमि को भोगभूमि माना, विरोध वही करते हैं जिनके मन में हम आक्रामक हैं, हम बाहर से आए हुए हैं, हमने विजय प्राप्त की है ऐसा सोचने वाली प्रवृतियां ही भारत माता की जय करने का विरोध करती हैं। और वह विरोध करने वाली आज की जो शक्तियां हैं वह एक भी

भारत के बाहर का नहीं। इसी में मैं फिर एक बार कहना चाहूंगा कि यहीं के अगर मूल निवासी हैं तो उनके अन्दर के उस हम मूल भारत की संतान हैं उस भाव को जागृत किये बिना ये विषय समाप्त नहीं होगा, वही एक रास्ता बनता है। उससे ही यह राष्ट्र प्रभावी होगा। हम परमवैभव की बात करते हैं। हम परमवैभव को प्राप्त हों और यह आज की आवश्यकता है कि हर पीढ़ी में, जन्म लिए हुए बालक ने एक श्रेष्ठ जीवन और परमवैभव की आकांक्षा का बीजारोपण करते रहना पडेगा। राष्ट्र एक शक्तिशाली बन सकता है इस भाव का निर्माण करना पड़ेगा। और इसलिए हर नई पीढ़ी ने इस श्रेष्ठता की आकांक्षा मन के अन्दर जागृत करना सर्वोच्च महत्वाकांक्षा मेरी यही रहेगी कि हमारा देश परमवैभव को प्राप्त करेगा। इस भाव को हर पीढ़ी ने प्रभावी रूप से संकल्पित करने की व्यवस्था इसको शसक्त करने की आवश्यकता है। सभी महापुरूषों ने यही किया है। हम कई महापुरूषों के नाम ले सकते हैं जिन्होंने स्वयं के लिए कुछ नहीं किया हैं। क्या छत्रपति शिवाजी महाराज ने अपने लिए राज्य की कल्पना की थी, क्या गुरूगोविन्द सिंह जी ने लडाई करते समय अपने स्वयं की आकांक्षा को बनाया था, क्या दक्षिण का जो विजय नगर साम्राज्य स्थापित हुआ क्या वह स्वयं की सम्पत्ति के लिए किया था। क्या क्रान्तिकारियों ने अपना जीवन अर्पण करते हुए अपनी स्वयं की गरिमा के लिए किया था। इन सारे महापुरूषों की जीवन हमें ये संदेश दे रहे हैं कि परमवैभव की श्रेष्ठ आकांक्षा मन में लेकर चलिये, इस मार्ग पर चलिए, इस मार्ग पर चलते हुए जीवन में संघर्ष करना पडेगा। संघर्ष इस भाव का मन में मेरे लिए संघर्ष नहीं है यह तो अपने श्रेष्ठ विचारों के लिए है, इस श्रेष्ठ परंपरा के लिए है, इस श्रेष्ठ संस्कृति के लिए है। यह विचार हर पीढ़ी ने प्रभावी रूप से संकल्पित करने की आवश्यकता रहेगी जो अनेक महापुरूषों ने किया और वही भविष्य में कुछ वर्षों तक निरंतर करते रहना पडेगा। इसलिए पंडित जी के द्वारा ये सांस्कृतिक राष्ट्रवाद संकेत क्या देता है, तो यही संकेत दे रहा है कि इस भाव को सशक्त करना पडेगा और इस भाव को जागृत रखने के लिए नित्य कुछ बातों का स्मरण करना पडेगा और स्मरण करते-करते संकल्प लेकर चलने वाली पीढ़ी खड़ी होती जानी चाहिए। वही पीढ़ी विश्व के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करने वाली बनेगी। विश्व के अन्दर सांस्कृतिक राष्ट्रवाद यही विश्व के कल्याण का मार्ग अगर है तो राजनैतिक राष्ट्रवाद से हटकर मजहबी राष्ट्रवाद के आधार से हटकर केवल अपने

विचारों के लिए, अपने व्यक्तिगत आकांक्षाओं की पूर्ति करने वाली राजकीय महत्वाकांक्षाओं से समाज का दृश्य बदलते हुए और विश्व के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करना इन बातों का बार-बार स्मरण करना पड़ता है। आपके लिए मैंने कोई नई बात नहीं कही। इस 14 अगस्त के दिन स्वतंत्रता दिवस की पूर्व संध्या पर हमने इसको स्मरण करने का अवसर हम सबको मिला। स्मरण के साथ-साथ इस पीढ़ी के और सभी के अन्त:करण में एक संकल्प लेकर दृढता के साथ इस मार्ग पर चलने का भाव सशक्त करना चाहिए। यही आज के स्मरण का उद्देश्य है। इसलिए मैंने आपके सामने बातें रखीं।

आपका बहुत-बहुत धन्यवाद।

❑

एकात्म मानवदर्शन के शिल्पकार

राष्ट्रऋषि नानाजी देशमुख

(11 अक्तूबर, 1916-27 फरवरी, 2010)

Deendayal Research Institute

Deendayal Research Institute, a premier voluntary organization of India is engaged in socio-economic and applied research in rural India. Ever since it was founded by the noted social scientist and philosopher, Rashtrarishi Nanaji Deshmukh in 1968, the Institute has been striving to validate on ground, the principles enunciated by late Pandit Deendayal Upadhyay through his philosophy of 'Integral Humanism'.

During its existence of over four and a half decades, the DRI, as it is commonly known, the Institute has done pioneering research on various issues and subjects touching rural lives. Briefly, the subjects are:

- agriculture,
- water conservation,
- livestock development,
- rural entrepreneurship and skill development,
- education,
- health and hygiene
- social behavior,
- inculcating scientific temperament among children, and
- identifying and adapting appropriate technology

Swavlamban, i.e., self-reliance is the key word that the Institute's activities revolve around. Contemporising indigenous thought, traditional wisdom and knowledge systems, and technologies are central to its activities. Education and health are other key areas.

A unique 'self-reliance model' evolved by the Institute has been awarded ISO: 9001-2008 for its replicability. Another unique concept that the Institute has worked with is 'Social Architect Couples' as the agents of change in rural India. Over the years, the Institute has evolved such model through its developmental activities in Gonda (UP), Beed and Nagpur (Maharshtra), and its flagship programme in Chitrakoot (UP).

दीनदयाल शोध संस्थान

7-ई, स्वामी रामतीर्थ नगर, झंडेवाला एक्सटेंशन,

नई दिल्ली-110 055 दूरभाष : 23526735

E-mail : dridelhi1@gmail.com, dridelhi@rediffmail.com

Published : January, 2018